अनन्त यात्रा



राजस्थान साहित्य अकादमी के
आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

संघी प्रकाशन
जयपुर उदयपुर

अनन्त यात्रा

प्रो० सुरेन्द्रदत्त बहुगुणा

संघी प्रकाशन
जयपुर उदयपुर

प्रकाशक : विजेन्द्र कुमार संघी
संघी प्रकाशन
सी-177, महावीर मार्ग,
मालवीय नगर, जयपुर

शाखा : 53, बापू बाजार,
उदयपुर-313001

मूल्य : पैंतालीस रुपये

संघी प्रकाशन, जयपुर-उदयपुर द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण : 1989 /

चोपड़ा प्रिंटर्स, मोहन पार्क, दिल्ली-32 में मुद्रित

ANANT YATRA : Poetry by Surendra Dutt Bahuguna
Price : Rs. 45.00

अकल्पना

जीवन यदि एकाकी होता और उसका कोई सामाजिक अस्तित्व नहीं होता तो क्या कोई चिन्तन-शैली होती ? संहिताओं का कोई स्वरूप होता ? ज्ञान की दिशाओं के अन्वेषण, विश्लेषण के क्या आयाम होंगे ? क्या कोई आदर्श और अनुकरणीय पुरुष होता ? समाज, राज्य और व्यवस्था की कोई दिशा होती ? जिस जीवन को देखने, समझने और परखने का सिलसिला हजारों-हजारों वर्षों से चला आ रहा है उसकी क्या गति होती—क्या कुछ कहा जा सकता है ? दुनिया में अभी तक जो प्रगति, अगति और विगति है उसके पीछे जीवन का बहुमुखी योगदान रहा और यही है अथ हमारी अनन्त यात्रा का !

कभी-कभी आपको भी विचार आता होगा कि आखिर जीवन क्यों ? यह सृष्टि क्यों ? जो परिवर्तन हम देखते है वे क्यों हैं और क्यों नहीं हों ? जब आप एक कली को महकता फूल बना देखते होंगे तो अपनी प्रकृति के अनुसार उसके प्रति अनेक भाव बनाने होंगे और जब उसको तोड़कर कोई बालों में गूंथे या कोई यों ही मार्ग में फेंक दे या पैरों के नीचे मसल दे तो निश्चय ही आप में एक परिवर्तित अनुभूति का संचार होता होगा। यह संचारी उद्वेग हर व्यक्ति में एक सा नहीं होता पर जीवन-गति पर उसका मूर्त अमूर्त प्रभाव प्रायः अवश्य पड़ता है पर, जाने क्यों अलग सन्दर्भों, मनःस्थिति और वातावरण में अनेकों में एक-सा या किसी एक में समयान्तर में भिन्न प्रभाव होते हैं ! इसके वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष विपक्ष में अनेक तर्क हैं पर सभी पर एक प्रश्न चिह्न रहता है और हम विचित्र ऊहापोह में उलझते रहते हैं किन्तु फिर भी लगता है कुछ है। (अनुपात में भिन्न होते हुए भी) जो सबको छूता और उद्वेलित करता है।

ऐसा नहीं कि उसकी खोज मे निरन्तर चिन्तन-मनन नहीं होता आया है फिर भी मानव-स्वभाव, स्वार्थ, प्रकृति और प्रवृति ने सतत् सम्वेदना को प्राणवान रखा (और सम्भवतः अनन्त तक यह क्रम चलता रहेगा) जो मन बुद्धि को छूती है। इतिहास साक्षी है कि त्यागे हुऐ सन्दर्भ फिर-फिर उभर आते हैं और विरोधी युद्ध विराम चलता रहता है और चलेगा। कुछ हैं जो इसको अनिवार्य दोष मानकर

चुप रह जाते हैं या स्वीकार लेते हैं किन्तु कुछ हैं जो बासी कुटिल सन्दर्भों की बर्बरता के विरुद्ध खड़े हुए और होते रहेंगे। द्वन्द्वात्मक स्थितियों का यह क्रम ही सम्भवत: जीवन है ?

उस अनन्त प्रारम्भ से आज तक की गति कितनी विविधताओं में बंटी है और अस्तित्व के कितने आयामों का उद्‌घाटन करती है और हमको बार-बार अचम्भित होना पड़ता है इस जीवन के दिन-रात की भूलभुलैया में ! विश्वव्यापी विवेचन और विश्लेषण होने पर भी कहाँ समझ पाए हम आज तक इस जीवन क्रम की प्रकाशमय गहराइयों को किन्तु जाने किस अहम् के कारण हम वास्तविकता नकारते रहते हैं।

जीवन का दार्शनिक पक्ष अपने में सम्पूर्ण होते हुए भी, भौतिक परिवेश में केवल जिजीविषा पैदा करता है और अन्धा बना मानव एक ऐसी दौड़ में लगा है कि जहां से चल कर आगे शून्य से अधिक कुछ नहीं। जीवन जन-जीवन खो रहा रहा हो और प्रबुद्धता शोषण वाहिका बन जाय तो जीवन यात्रा का मार्ग कैसा होगा ? फिर भी चक्र चलता रहता है—वासनाएं आकारिक ही व्यक्ति को व्यक्ति का दास बना देती हैं नहीं तो क्या हत्यारों को पूजा जाता और वहशियाना शराब की नदियों में बेबस नंगी लाशें तैरती रहती ? ऊपर से भव्य दिखने वाले ये मानवी-ऐश्वर्य-शिखर वास्तव में कितने बौने हैं, कितनी रेतीली बुनियाद पर हैं सब जानते हैं फिर भी चमत्कृत ! मानवता को चन्द सिक्कों में क्यों बेचा जाता है और सब कुछ होते हुए भी कोई अभाव की आग में क्यों जलता है ? कोई जीवन जीने योग्य नहीं रहता और कोई खिंचता जाता है ?

कितना बड़ा परिहास है कि जीने के लिए, शान्ति और समृद्धि के लिए हम सारे विनाश के उपकरण लिए तैयार हैं और कुछ के ऐश्वर्य के लिए हजारों बलि दी जाती है, एक के पाप के लिए हजारों की हत्याएं होती हैं ! कैसी व्यवस्था है कि जो जीवन नहीं दे सकता वह जीवन लेने का हकदार है ! क्या है यह न्याय जहां दोषी तो हर सम्भव सुख भोग रहा है और निर्दोष उपेक्षित अनन्त यातनाओं को भोग रहा है।

इस यात्रा के कुछ खोखले आदर्शों को शब्द जाल में इस प्रकार पिरोया देखा है मैंने कि चारों ओर व्याप्त झूठ-सच लगने लगती और उन्हीं सन्दर्भों की हड्डियां चबाते-चबाते, अपने ही खून को पीते अधिकांश लोग रस का आनन्द लेते लगते हैं। विडम्बना यह है जो इस ओर संकेत करता है विद्रोही माना जाता है और उसको जहर पीना या सूली पर चढ़ना पड़ता है। जाने क्या नशा है इन शब्दों का कि कुछ नामों के पीछे खून की नदियां बहती हैं और मरने वाला किसी नाम का दास होता है—बस एक भीड़ और उसके ऊपर स्वार्थ राज करता है और इतिहास उनके गीत गाता नहीं थकता। वे पागलपन को अणुधर्मी चिनगारियां देते रहे और

अलग-अलग नाम देकर जीवन से जीवन को अलग करते रहे।

धर्म-दर्शन के सामाजिक मीमांसक, जो 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' मानते हैं, खोजते रहेंगे कि वह क्या है जिसने प्राणों को पोषित किया और प्रथम प्रेमांकुर जगाया जिस कड़ी को थाम यात्री अनन्त यात्रा पर निकल पड़ा। उनको इस नक्कारी दुनिया में अहम् का बौनापन हर त्रिकोण पर दिखता रहेगा और कभी न कभी उनको सत्य की आवाज सुनाई देगी।

अनन्त यात्रा के राही इसको जिस दृष्टि से देखना चाहेंगे उनको वह मिलेगा—चाहे आध्यात्मिक गहन चेतना लिए हों या आधुनिक भौतिक स्थूल विवेक, चाहे ठोस धरती पर पैर हों चाहे मनाकाश की उड़ानों में निमग्न, उनको सब कुछ मिलेगा क्योंकि यह अनन्त खोज है जिसमें हर अगले कदम पर कुछ अजूबा है कुछ चमत्कारी!

इस अनन्त यात्रा में कुछ तिनके मुझको भी मिले जिनको कोई तो संजोएगा और करेगा एक ऐसे विश्व का निर्माण जिसमें हर नाशवान अमरत्व का अधिकारी हो जाये। मैं तो चला जाऊंगा एक दिशा में—कौन सी है, सच मैं नहीं जानता और सोचता हूं इस गत्यात्मक अनन्तता में यही ठीक है—

टूटन और विरोधाभास में जीवन का गंतव्य क्या है? मलिन भावनाओं, उभरते षड्यन्त्रों, दम तोड़ती आशाओं, और दम्भ यंत्रणाओं से बना कोलाज ही आम जीवन यात्रा का स्वरूप बन गया है। ईश्वरीय करुणा और अभाव, साधु से हर लम्पट को मिल रहा है। फिर भी 'अभ्युत्थानाय धर्मस्य संभवामि युगे युगे' के सहारे यात्री है इस अनन्त यात्रा में, मेरा विश्वास है जिस भावना और कोण से देखेंगे उत्तर मिलेगा—

—बहुगुणा

क्रम

शून्य…वैविध्य—संकल्प

कालातीत काल से
निरन्तर प्रवाहित गति,
जो
शून्य से वर्तमान तक जुड़ी,
अपनी नित्य नवीनता का
बोध कराती कराती
जाने क्यों
भविष्य प्रेरित करती है ?

ईश्वरीय जनपद वीथिकाओं में,
देखी हैं क्या,
विविधता के चेहरों पर
एक साथ
मृत्यु और अमरत्व की लहरें,
चिरन्तन कल्पना का
हर्ष और विषाद,
अपने वक्ष में संजोए—
स्मृतियों के पुष्पकण
और अवचेतन की शून्यता की
प्रत्यावर्तित जागरण-ज्योति
वालुकणों की चमक सी,
कभी स्थिर कभी अस्थिर !
और नहीं जानते हुए भी
मैं जानने का दम्भ भरता हूं ??

यों तो
मैं जान गया था
कालातीत शून्य को,
जब
अस्तित्व, अनस्तित्व, प्रारम्भ, मध्य और अन्त
कुछ भी नहीं था।
तारिकाओं की किसलय कूक
अबोधगम्य अन्त में लीन थी
और
यह जल, थल, आकाश—
अज्ञेय, अपरिमित—
जिसको मैंने नाम दिया—'तत्त्व'
क्योंकि वह
जीवों की मृत्यु के अमृत्यु का
बोध था !

'अन्धकार' को अन्धेरा छिपाए
जाने कब
विकार के निर्विकार रूप को
चेतना के किनारे छोड़ गया ?
क्या वह केवल कौतुक था
या यथार्थ ?
और मेरी दृष्टि
अनन्त के अनचीन्हे चित्रों में चित्रित !

तब
आस्था, अनास्था
अज्ञेय-गर्भ में कुलबुलाती,
निस्सीम कुंज-निकुंजों में—
अनचीन्ही अवस्था में—
आत्मा, अनात्मा के पूर्व
ही अवस्थित थी—
दृश्य परछांई से दूर,

बहुत दूर !
और मैं
सृष्टि जन्मा अनन्त था
केवल अनन्त !
शून्य पर टिका
यह था मेरा प्रथम विश्व !

यह
मेरा प्रथम विश्व,
जिसका अनुगामी रहा हूं मैं
अनबूझे अनंत से
वह आज तक
फरेब करता रहा
और करता रहेगा
पर,
उसके ही सहारे
आरक्त कपोलों की
प्रणय भाषा के स्वेद बिन्दुओं की आभा को
ऊष्ण अधरों से पी
मैं
विश्व पर विश्व बिठलाने का
उपक्रम करता रहा—
गतिशील, किन्तु कितना स्थिर—
पाषाण-खण्ड सा !
और मैंने समझा
कालनियन्ता मैं हूं !!

कितने अनामी बिम्बों के बिम्ब
ज्योति की क्षीण दिशाओं को
जन्म दे,
समाधिस्थ से,
प्राणायामी मुद्रा में—निराधार—
चक्रों पर चक्र बनाते रहे ।

अंधकार तथा प्रकाश,
सगोत्रीय वन,
जल-समिधाओं से
अग्नि-होम करते रहे।
कहते हैं
तभी जीवन का प्रकाश से ऐक्य हो गया?
जाने कैसे
कोई अजन्मा स्वर
जन्म लेकर
मेरा वेद बन गया
और मैं
अगति की गति का चितेरा मात्र !

वह
कितना सुनहरा नयनाभिराम बिम्ब था
जो
ज्योति के आरम्भ और अन्त की
संगीतमय दौड़ से पूर्व भी
वैसा ही था
और आज भी वैसा ही !

कितना सच सपना था वह
कि जीवन में मृत्यु
और मृत्यु में जीवन है।
रेतीली किरणों के
शीतल निर्झर से
बिम्ब और प्रतिबिम्बों के
असंख्य कोणीय इन्द्रधनुष,
दिखने में रूपायित
पर
रूपों से ऊपर
और गम्यातीत बोधों में
चंचलतम,

गति सार्थकता का
अमिट कौतुक,
सृष्टि जागरण का
चौंका देने वाला रूप !

अचानक
एक स्वर गूंजा—
'ऊषावतरण' !
दृश्यादृश्य—
लौकिक महिला का अमर प्रकाश,
अनुभूति की ज्वलित शिखा,
पूर्णता की प्राप्ति ।
पर
एक दृश्य पटाक्षेप
और
मेरा दूसरा विश्व अवतरित हो गया !

ऊषावतरण

उज्ज्वल,
चंचल,
गतिशील,
शैलमालाओं का हार पहिने,
दिन रात की सीमाओं में,
सृष्टि चक्रावती चातक सा,
अपने ही ओज-स्वरों से चकित—
कुछ खूंटियां गाड़ता है
अनन्त-शून्य-मापन उपक्रम में
और जलता बुझता रहता है !

अनन्त !
अजन्में जन्म की
कालाब्धि ध्वनियों को
संजोता, संजोता—
आनन्दातिरेक में,
पृथ्वी पर
करुणा पाद-प्रच्छालन के लिए
प्रथम उषा-कणों के
अर्घ्य चढ़ाता, चढ़ाता
विभोर हो जाता है
और छलावा जानते हुए भी
हमेशा ही
छला जाता रहा है !

और मैं
स्वयम् ब्रह्म-पद पर आसीन !

तात्विक,
शाश्वत
और परिवर्तनशीलता की
सन्देश वाहिका उषा,
एक ही रंग के
अनेक टुकड़े बिखरा कर
विविधता के दर्शन-पुष्प छिटका देती है।

उषा
पूर्णता के खण्डों को,
सृष्टि-यज्ञ की आहुतियों सी,
विश्व-निर्माण में होम कर
उसका
साकार पाठ पढ़ा हंसती है
और
शबनम के अश्रु कणों को
मानस-कमल-पत्रों पर
बिखरा जाती है
और मैं मनुष्य
देवत्व अवतारी हो जाता हूं !

हर अनबूझी वस्तु—
ईश्वरीय अवतरण का जागृत चिन्ह,
अनन्त ब्रह्माण्ड का प्रकृतिमय रूप,
तात्विक जीव का स्थूल स्वरूप,
और ज्ञानातीत प्रकृति के
परिवर्तनों की
प्रतीकमय अनुभूति है।

तभी तो
बाधाओं, सुविधाओं का

जड़चेतन विकास
धीरे-धीरे
उस दिव्य आलोक से
जीवन की अंधेरी घाटियां भरने लगीं
और यह चिरन्तन धारा,
जन्म मरण की ऊहापोह से,
अविच्छन्न रूप से
स्थिर होते हुए भी
पूर्ण गतिमान है !

पर

भेद-अभेद का भुलावा,
ऋचाओं-सा गम्भीर होते हुए भी
बालू-सा अस्थिर बना रहता है
और मेरा मानवीय रूप
चौराहा बन गया है !

प्रत्येक तत्त्व-बिन्दु,
अज्ञात पर टिका,
उलीचा-सा लगता है ।
हर बार अतीत की कोई पुस्तक खुलती है
और उसका कोई पन्ना
फड़फड़ा कर,
ज्ञात बिन्दु का दम भरता है ।
पर वही
'प्रकाश जीवन'
'जीवन प्रकाश'
चिल्लाता चिल्लाता
फेरी वाला बन जाता है !

यह धरती भूमती है
अजन्मे जन्म का आलोक संग्रहीत करने,
ईश्वरीय पार्थिव प्राकट्य की

सूचनाओं का जाल फैलाने,
जिनमें
मीन-कोंपलों-सा—
उलझ-उलझ—
मानवीय पौरुष बिखर जाता है
और मैं सोचता हूं
गुणवत्ता शिखरों पर चढ़ रही है !

एक ही फूल
कितनी अजनबी क्यारियों में बिखर
असंख्य जिह्वा हो गया है
और मैं
तब देहधारी अन्त की समाधि बन जाता हूं !

अपनी
दिव्यता की अक्षुण्णता के साथ
असहनीय दैविक-शक्ति को
जीवन के साथ जोड़,
धरती
आकाश में
रिक्तता का सम्बल ले,
तिनकों के भव्य वितान को
माया की कल्पित आभा से
धूमिल कर,
विश्वास और अविश्वास की
खोहों का सृजन करके—
जाने क्यों—
हर द्वार खटखटाती है ?
और मैं
अपने आकारण विचारों से
स्वयम् चमत्कृत !
कहते हैं
अनन्त की प्रज्ज्वलित ज्योति

पार्थिव, शरीर के अन्तर में,
प्रेमासिक्त मधुरिमा बिखेरती हुई
प्रकाश-किरणों की वैतरणी पर
इस धरती में
सर्वत्र प्रवाहित है।

उस ज्योति की चकाचौंध ने
अंधकार को
मन की गहराइयों में
शेषनाग के आसन पर विठला कर,
पार्थिव शरीर के
चारों ओर लिपट कर कहा :
'मैं तुम्हारी हूं
केवल तुम्हारी
पर
धरती के लोग
मुझसे घृणा करते हैं !
तुम चिन्ता न करना,
मैं उस घृणा को
माया मंत्र दे
और सबको बहाकाकर,
चुपके से,
तुम्हारे वक्ष पर
अपने स्निग्ध कपोलों की थाप देने
कभी भी चली आऊंगी।
पर
तब तक तुम
आगत तृप्ति का आसव पी
नीरव बने रहो।'

और
तभी से काल-प्रवाह
दिन-रात में बदल गया !

और मैं,
चेतन अवचेतन का—
खिलौना मात्र,
प्रतीक्षा में हूं ! ?

वह
अनादि को आदि का रूप देने,
इस धरती पर,
नित नए खेल खेलती है—
आश्चर्यजनक कौतुक !

और यह धरती,
जो मेरी होते हुए भी
कभी मेरी न रही
और न रहेगी,
उसमें ही
नित नूतन वारिधि बवण्डर
नाचते गाते
झूम-झूम जाते हैं।
कुछ हरे वृक्ष सूख जाते हैं
और कुछ पौधे
पल्लवित हो
अनजाने ही घुंघरू बजाने लगते हैं।

सीमाओं के पहरे
टूट-टूट कर
फिर जुड़ जाते हैं,
और मैं
आह का आग्रह बन
केवल तिलमिलाता हूं
सहम जाता हूं !

सागर की अतल गहराइयों से
उगे सूरजमुखी,

किसी चिन्तन-मुद्रा में,
पीले मोती झरते हैं
और उधर
मन्थर गति से गर्वोद्धत सूर्य,
उषा से आंखमिचौनी करता
चूम-चूम जाता है
कोंपल कामनाओं को !
और मैं
कभी सूरजमुखी को देखता हूं
तो कभी
उषा की रक्तिम अरुणिमा !

बेचारी उषा—
आरक्त मुख—
प्रीतम की भुजाओं में सिमिट कर
नव-जीवन पिपासा ले,
दैहिक पीड़ा को
वरदान गीत सुना
जाने कहां खो जाती है
दिन की उद्दाम तरंगों में !
और मैं
खोया-खोया सा,
रजनीगन्धा को उधार मांगता हूं !

कोई अज्ञात,
अनदेखे ही
नीचे
बहुत नीचे उतर जाता है—
एकाकी समभाव में गुमसुम !
और मेरा वह विश्व
जो आगत है,
दृष्टव्य है,
अपना अस्तित्व और स्वत्व,

सब कुछ बिसार कर—
अनन्त की चादर पर
प्रणय के कुछ गीत लिख कर
एक पहेली छोड़ जाता है—
जीने और मरने की ! !

शताब्दियों के कारवां
रेगिस्तान और हरियालियों पर
निरन्तर चल रहे हैं—
आत्मा और परमात्मा का
बोध कराने ।
पर
सब अन्तर्मुखी हो छटपटाए हैं
और इस यात्रा में
मेरा तीसरा विश्व
हिजोरो-सा सामने आता है !

विश्लेषण···ध्वनि···परिवेश·····

सन्धि-रेखा पर खड़ा हो
कोई
अदृश्य-जगत का स्वामी,
अप्रेम की धुंधली ज्योति में,
सुन्दरता की परछाईं डालता हुआ
'आत्मा की पवित्रता' की
परिभाषा को—
हंस-पांतों सी—
आकाश-पटल पर
गतिमय कर देता है !

उसके साथ मैं
अपने मन डैनों से
ऊपर बहुत ऊपर
उड़ान की ऊहापोह में
हर खेतों की कतारों पर
गतिमान विश्राम का उपहास करते,
क्षितिज बनाने के सपने देखता हुआ
अपने आपमें शिथिल हो जाता हूं ।

कोई विजय
किसी पराजय को सन्तुलित करती
और पराजय
विजय का बहाना ढूंढ़ती है

पर
हर विजय
कहीं न कहीं पराजित होती है !

यह द्वन्द्व
प्रकृति व्यापी
और कालजयी है।
अधखुली अधूरी आंखें
केवल देखती हैं
और जो दिखलाई देता है
व्यक्तिगत सत्य बनकर
हर जेब में मौजूद है !
यही है प्रारम्भ
जब दैहिक पीड़ा देह धारण करती है

सुख-दुख की एक वैजयन्ती—
दम्भ-पीड़ित—
कभी सत्य असत्य की ग्रीवा-कुण्डली बन,
जीवन मापती हुई
शुभ ज्योत्स्ना की शीतल छांव में
किलकारी बो देती है
और अनायास ही
मांग का सिन्दूर
रक्त उगलने लगता है !

कितने ऋषित्व—
अमोघ मंत्रों से अभिसिक्त—
विराट् की चादर में
टिमटिमा कर ही रह जाते हैं
और
न-इति की आराधना में लीन,
आधिक भय और विश्वास के
झूले में पेंग भरता हुआ

दैहिक लोथ का
सन्तुलन बिगड़ जाता है।
कोई उसको 'मोक्ष' कहता है
और कोई 'मौत' !

किन्तु
ज्ञानार्जित जिजीविषा—
चमकीले पत्थरों सी—
अथाह सागर में गिरती रहती है
और
मेरी धैर्य-आकांक्षाओं के कुछ वृत्त
फैलते-फैलते
अदृश्य में विलीन हो जाते हैं,
फिर भी मैं
व्यामोह के चक्रों में चकित मात्र !

मैंने हर अविश्वास को
विश्वास का नाम देकर
आकांक्षाओं के अंगार धधकाए
और मैं ही
उन पर चढ़ी राख की परतों को
उड़ाता रहा।
किन्तु मेरे देखते-देखते
वे बौने होते रहे !
और
मेरी अधबुझी आकांक्षाएं
फिर भी
जीवन-स्वत्व बनी रहीं !!

मैंने,
गत्यात्मक दिशाओं की ओर
प्रगतिशील राजमार्गों का निर्माण किया।
अपने बिम्वों के पोस्टर

हर चौराहे पर लटका कर
जीवित पिपासा को
पूरा करने का प्रयत्न करता रहा
किन्तु
मौसम के ज्वालामुखी
उनको उड़ाते रहे
और मैं
दर्शन से इतिहास बन गया !

मैंने
पलाश के फूलों की
अरुणिम आभा को
जुही के फूलों को बांट दिया !
और फिर
किसी दम्भ जिज्ञासा के लिए
लहराती सरिता
और सघन हिमखण्डों में
तत्वों की प्रधानता ढूंढ़ता रहा !

मैं
उगते सूरज पर
आंखें गड़ाए
मोक्ष-मंत्रों के चंवर डुलाता रहा,
किन्तु
जाने कब
मैंने ही उसका विसर्जन कर
अनगिनत सूरजमुखियों को
अन्धा बना दिया !
और अंधकार ने
एक साथ सब के अस्तित्व का
उत्तर दे दिया !

मेरे विचार का
प्रत्येक विचार-मणि
गुंथ-गुंथ कर विखर गया
और कल तक का स्थिर
आज अस्थिर हो गया है
और मैं
दुनिया के हर मोड़ का
मात्र बिन्दु वन गया हूं !

शब्द !
शब्द ब्रह्म है ?
मैंने देखा नहीं
नहीं, देखा है ?
हर ध्वनि निस्तब्धता से उत्पन्न हो
मौन में विलीन हो जाती है
और मौन,
ध्वनियों से अठखेलियां करता
मुखर हो जाता है—
शायद
विश्व-जयी
सर्वव्यापी होने ?

मैंने
निस्सीम आकाश को
विमान-रेखाओं से आवद्ध कर
सीमाओं में बांध दिया
और देखते-देखते
बच्चे आकाश वन गए !

देखो
नदी की अविरल धारा
तब तक ही महत्वपूर्ण होती है
जब तक

उस पर पुल न बने
उसका अस्तित्व समाप्त करने
पर क्या
ये लोग कभी भी
प्रकृति-अस्तित्व को
चुनौती देने में सफल हुए ?

पहाड़ की कन्दराओं
तथा
अभेद्य अट्टालिकाओं में
जन्म और मृत्यु
समान रूप से
अठखेलियां करते रहे
और सड़क का प्रत्येक मोड़
निस्सीम की शून्यता में डूबा,
जीवन-प्रत्यावर्तन इंगित करता
आगे बढ़ जाता है।
और मेरी सभ्यता—
मील का सा पत्थर—
स्थिर···
गतिहीन गति !

मेरी स्थिरता में जीवन
मृत्यु का वरण करता है
और इच्छाएं
भटकती रहती हैं !
भटकन की इच्छा
बुरी लगती है
किन्तु इस इच्छा का
कारण और अन्त
भटकाव ही तो है।
उस समय

मेरा होना या न होना
केवल बेमानी लगता है
क्योंकि तब मैं
कप जल सा—
किनारों से टकराता भर हूं
और
एक हास्यास्पद ध्वनि—
गंदली हो—
व्यर्थ नष्ट हो जाती है।
किन्तु मेरा मैं
बचपन सा हंसता रहता है !

मेरे चारों ओर
कितने महल उठते गिरते हैं,
समय की परतें
इतिहास को समेट सो जाती हैं !
फिर
नई खुदाई में पुराने चिन्ह
कितने नए लगते हैं ! !
बन कर मिटना
और मिटकर बनने की सभ्यता
मानवीय कौतुक के
नए आयाम उद्घाटित करती है !
तभी तो
फिर फिर नवीन रूपों में टूटने वाले
अडिग से खड़े लगते हैं !
और मैं ही तो
उस टूटन की अकही कहानी हूं !

राख की ढेरियों में
कितने चेहरे उभरते हैं ?
उनमें से कुछ

कालजयी कहलाते थे
जिन पर बहुत कुछ लिखा गया
पर
उसमें वे कम
लेखक अधिक था।
तभी तो
समता विषमता के कोहरे के
आंचल में सिमिट,
हम सभी
निराकार बन गए हैं!
और मेरे सामने
चेहरों का अम्बार-सा लगा रहता है!!

क्रम
समय व्यतिक्रम से
कभी कितना ऊपर उठ सका ?
लक्ष्य,
वितृष्णा से बंधे,
वायु झोंकों में बिखर जाते हैं
और प्रत्येक आरम्भ का अन्त
फिर आरम्भ से हो जाता है!

दूर…
जंगल का कोई वंशी स्वर,
बाजार के कोलाहल से ऊपर उठ,
कभी-कभी
कण्ठ-हार पिरोने लगता है
और हड्डियों की फासफोरसी चमक में
दो प्रेमी
एक-दूसरे की आंखों से
प्रकृति की भाषा का पाठ ले,

हर्षातिरेक में
गति अगति से ऊपर उठ जाते हैं !

किन्तु
समाज की आतंकी आवाज,
उन्हें नींद की बांहों में बांध कर
चिर समाधि में ले जाती है
और फिर
ज्वालाओं के चक्र घूमते हैं !
जीवन को
एक और नई मौत मिल जाती है !
और मेरी नृत्यकला
अटूट रहती है
अकाल सी !

यहां पर
काला धन उग रहा है।
पिछली आस्था के चमकीले पौधे
अचानक सूख गए हैं,
पर नेता अभिनेता की फैली बालियां
नए सरगमी स्वरों में
(मद्यपी लय में)
झूम-झूम जाती है
और जीवन
झुलसी ऋतुओं से जीवन पा
धरती पर
'युगल' बिखेर देता है—
क्रम-हीन
कोलाज सा !!

मोल के पत्थर
अन्धे हो कर भी—

मौसम से शरमाते हैं !
उनकी गालियां
वेद मंत्रों को संवारती हैं !
और गर्मी सर्दी
अपना रूप बदल कर,
पर्वतांचल में बहती सरिता के
कलकल स्वर को बहका कर
बाढ़ों सा अट्टहास बन जाते हैं !
और अन्दर से खोखले
बूढ़े वृक्ष
केवल सिर हिलाते रहते हैं !
और मैं जानते हुए भी,
न जाने क्यों,
फागुन बन जाता हूं !!

बासी गुलाब,
रेफ्रीजरेटर में ताजा हो
महीनों को चमका कर
मौसम को चुनौती देता है !
और बौना मन
हर बासी को ताज़ा मान लेता है ?

युद्ध की विभीषिका में,
मिट्टी की सौन्धी गंध
विष बिखेरती रहती है।
पर युद्ध लोलुप
उसका रसमय आनन्द लेते हैं।
और मैं स्वयं
गुलाब की उपमा बन कर
रस पर्याय बनने के सपने देखता हूं ?

हर बीता युग
नए युग को कोसता-कोसता

दब जाता है।
पर उसकी गंध
कोने-कोने से फूट कर
मोहल्ले भर में फैल जाती है
और वृद्ध विश्वासों के भय से भयभीत
हम
अपने दरवाजों खिड़कियों पर
मोटे परदे लटकाते हैं !

अब तक कितने ही ईश्वर
'टच-मी-नॉट' कल्पों में
मदिर-अमृत-धारा में बह जाते हैं
और मेरी विनयशीलता,
सीमाहीन विनम्रता के साथ,
अग्नि बन जाती है !

मानव जीवन,
भूली वार्ता-प्रसंग सा,
वर्तमान के अपने अदृश्य को
तैयार करता है।
क्योंकि
अनुक्रम की अपरिहार्य शृंखला
आपस में जुड़ी है
और वह
देव मार्ग पर पड़ी बाधाओं को
झाड़ कर
जाने क्यों और कैसे
नित्य नयी बाधाएं उगा देता है ?
और मैं
अपने भविष्य को
नए सिरे से रचना चाहता हूं !

वहीं—
समदिशा बहाव में टकराव
आश्चर्यचकित करता है
और जाने कैसे
मूर्तिमान सत् असत् की
'त्रिवेणी' बन जाता है ?

यह सब
पहले भी था
अब भी है
और आगे भी रहेगा।
फिर भी मैं
अपनी आत्मा को
सारे विश्व से तोलता रहूंगा।

शून्य में अटका,
मेरा विश्वास
जीवन के अर्थ को खोजता है।
किन्तु
प्यार, विश्वास और आशा—
सब प्रतीक्षा में हैं
और उन सबकी सार्थकता
मात्र रिक्त में ही अधीष्ठित है !
क्योंकि
मृत्यु-गुफा-जगत में
जीवन का दावा सिद्ध करना
सनातन इष्ट बन गया है !!

कोई दूर
बहुत दूर से
आत्मा को कहता है—
"स्थिर हो जा

और आने दे अंधकार को,
ईश्वरीय कालिमा समझ,
आने दे आने दे
अपने चारों ओर !"
और मैं
हारा सिपाही सा,
केवल लम्बे डग भरता हूं।

ठहर !
भावना के ऊपर—
बहुत ऊपर की उदात्त शक्ति को
परखने दे।
क्योंकि तू
विचार-अविचार—
कुछ भी नहीं,
केवल जिज्ञासा का
मात्र अंधेरा और प्रकाश !

तू
ऊपर उठ।
तब देखना—
अंधेरा प्रकाश होगा,
स्थिरता नाचेगी
और चिन्मय तत्त्व,
भव्यता और स्थिरता के बीच
जगत में
विराट सृष्टि उत्पन्न करेगा।
जीवन-मरण संकल्प शक्ति
आवेगों से भर जाएगी
और मैं वहां पहुंच जाऊंगा
जहां मैं हूं—

जहां तक मैं हूं।
यही संधि रेखा है
जब मैं
निष्ठाओं का महासागर बन जाता हूं।

बौने पहाड़…त्रिकोणी वन…

बौना मानव अहंकार
अपनी छोटी-छोटी लहरों के
पर्वत लुढ़काता—
मेरा चौथा विश्व
अवतरित करता है।

उसके मृत्यु यक्ष,
जीवन के प्रश्न उछाल कर,
जीवन सौन्दर्य ही पी जाते हैं!

काल तरल प्रकाश से आलोकित,
नाशवती दुनिया की
अविनाशी खोज में,
देवत्व की कामना ले,
हम केवल
लहरों के तन्तु जोड़ते रहते हैं!
और मृत्यु-यक्ष
प्रकाश कलश को चुराते रहे हैं!

वह घर है
जहां से प्रारम्भ करो।
किन्तु मैंने मिट्टी का घरोंदा बना कर

उसके चारों ओर
लोहे की चादरें तान दी हैं
और जैसे-जैसे
मेरी आयु बढ़ती है
यह दृश्यमान जगत
अजनबी बन जाता है !

सभी ओर
मृत्यु और जीवन के स्वरूप
संदिग्ध और पेचीदे बन जाते हैं ।
और जीवन-जलन
निश्चय और अनिश्चय की भट्टी बन
दग्ध करती रहती है ।

फिर भी
अज्ञेय अपरिमित की आशा में,
देव अदेव की कल्पना—
मृग-मरीचिका दौड़-सी—
जीवन के हाथों
जीवन का शोषण करते हैं
और मैं
हमेशा ही
अनन्त के गोलार्ध में सुमेरुपक्षी ।

'दयाहीन-भव्य' की निश्चल दृष्टि,
बूढ़े और जवान की—
कोई समतल भूमि,
अन्वेषी भावनाओं की—
अन्वेषक गति,
गहन अन्धकार के—
दीपक चक्र,
इन सब ने मिल कर

अनेक साम्राज्यों की
परिधियां खींची हैं!

बालू के फैले मार्गों पर
मौल श्री के पुष्प उगाने का नाटक कर
हमने
टूटे हुए राजा के लिए
पगडंडियों को
राज-मार्ग की संज्ञा देकर
खासा भ्रम पैदा किया है!

उसी मार्ग पर—
आगे, बहुत आगे—
एक ऋषि-आश्रम है,
जहां शेर और मृग
गलबाहें डाले
लेटे-लेटे
भविष्य चर जाते हैं!

कल के सपने आज
और
आज के सपने कल
टूटते रहते हैं!
कोई बौना गीत
तीनों लोकों को नाप लेता है!
और सोम-सेवी इन्द्र
चोरी के अपराध में शापित,
गली चौराहों पर
मजमें लगाता फिरता है!

यह
चतुष्कोणी विश्व
हर कोण प्रकाश को चुराता है!

और सागर के किनारे—
पानी से भरे घोंघे—
सीपों में मोतियों का भ्रम बनाए हुए हैं !
गिरगिट सभ्यता की
पारदर्शी चादरें—
गन्दली हो
दीवारें बन गई हैं
और रंगों की पहिचान लुप्त हो गई !
और मेरा तपस्वी स्वत्व
किनारे पर खड़ा ऊंघता है !

तुम रोज
कुछ नाम बदल कर
उसी मार्ग को नया कहते हो।
किन्तु याद रखो
हर सामने वाली दिशा उत्तर नहीं होती
और हर चोला
आदमी नहीं होता।

पर यह भी सत्य है कि
हर दैहिक शक्ति को,
देह धारण कर,
क्षोभ का सुख भोगना पड़ता है।
और हमारा भ्रम
हर रिक्त पर
सल्में-सितारे पिरोता फिरता है।

शीत हो या ग्रीष्म,
रास्ते खाली नहीं होते।
हिमालय या आल्पस् में
गहरी घाटियां हैं
पर नामों के भ्रमजाल में
जीवन उलझा है

और प्रकृति
हर मौसम में हंसती रहती है !

कुहासे की दुनिया
कितने चोरी के भेद छिपा देती है
और ग्रीष्म की रतनारी आंखें,
कुछ पसीना बहा कर,
ठंडक तो पहुंचाती ही है।

क्रम
रुकता हुआ दिखता है
पर रहता
निरन्तर गतिमान है।
उसके प्रत्येक अवरोध
और उथले चमत्कार—
बड़ी रंगीनियों के साथ—
अखबारों में छपते हैं
और फिर भुला दिए जाते हैं !

तुम वहीं से चलकर
वहीं आते हो।
फिर भी नए नाम देकर
प्रसन्न होते रहते हो
और
प्रेम की धारा का प्राण-स्रोत
हर क्षण सूखता रहता है।

मेरी दुविधा के चौराहे पर
नई मूर्तियां खड़ी हो जाती हैं
और हर 'पुराने' सत्य को
झूठा सिद्ध करने का प्रयत्न करती रहती हैं।
पर उनके चारों ओर
हरसिंगार के फूलों के स्थान पर

पॉपी और कैक्टस की
खेती उग आई है।
शायद यह भी एक रास्ता हो ?

मैंने अपने—
हरे भरे खेतों के चारों ओर
'वादों' के कटीले तार खींच दिए
और
आदमी का नाम
कहीं पूंजी
कही श्रम
और कहीं तानाशाह हो गया ! !

तुमने
स्वयम् को ठेके पर देकर,
ज्ञान को सस्ते भाव खरीदा है
और अब
दुनिया भर में
तुम उसकी तस्करी करते हो
कितने ही नामों से
पर उसकी दुनिया
भूमिगत ही कहलाई !
हालांकि राज ने
उसको अलंकृत किया ?

यह सच है
तुमने आस्था और ईमान के
कुछ नए कुएं खोदे हैं।
उनकी गति उत्साहित करती है !
पर यह क्या
उनकी मुंडेरों पर
विषधर दूध पीते हैं
और बेचारी करुणा

दंशित है, मूर्छित है !
और मैं बगुला बना
आसपास से निर्लिप्त !!

कितना और कैसा वर्ग-भेद है ?
प्रकृति में
अन्तरात्मा लिप्त है
और विद्या की गहनता
अविद्या के किनारों पर टूट गई,
जबकि
दोनों सहोदरा हैं !

गीतों की सरिता में
रक्त के सैलाब
किनारों को तोड़ रहे हैं !
जाने उन थपेड़ों में
यह बेचारा तन
कहीं ठौर भी पाएगा ?
कितना विवश हूं
और मेरे गीतों के पंछी
अदृश्य राहों पर उड़ चले हैं !

सृष्टि रचना का विराट,
अपनी कृति पहचानने में
शायद पगला गया है ?
तभी तो सिर धुनता है
अपनी ही कृति के चमत्कार पर !
सोचता हूं
मेरी यह वियोगी करुणा
क्या उसकी आह की
उपज है ?

हां—
यह वही है…वही है !

शून्य ?
भयावह !
धरती के दैहिक सुख पर
कंटक बाड़ें—
जंगलों का रूप लेकर—
ऋषियों के वुतों को ठगती हुई,
वैदिक सभ्यता को
निगल गई !
और आज
मेरा पुण्यमय यज्ञ
आंसू बहाता है !

आकारिक-वासना

कोयले की खाने हों
या सोने की,
लहराते खेतों की सरगम हो
या कंटक वनों का दानवी अट्टहास,
ताजमहल की कविता धारा हो
या टूटी झोंपड़ी की अन्तिम सांस—
सभी में दास बिखरे हैं !

लोह श्रृंखलाओं में बंधी
मानव देह
पशुवत् सीमाओं में जकड़ी
केवल तड़पती है !
और सुरामृत आसुरी 'सुर'
उन सब को
सलीबों पर लटकाते रहते हैं—
जिससे
रोम-साम्राज्य,
विश्व वैभव प्राप्त करके,
दासों को शेर से फड़वा कर
तमाशा देख सके !

ये निरीह
मनुष्य-जन्म देवता
अंधेरी, संकरी, सीलभरी गुफाओं में—

अपने मैले आंसुओं से
कीड़ों की मार से बने घावों पर
मरहम लगाते रहे
और तब से अब तक
मेरा सुप्त पौरुष
अंगड़ाइयां ले रहा है !!

ईश्वरीय सत्ता को
चन्द लोगों ने तिजोरियों में भर दिया।
और कुछ ने उसके चारों ओर
पथरीले परकोटे चुन
उसे छिपा दिया !

दिन-रात की सारिणी—
कुछ की बहक का शिकार—
जन्म-कुण्डलियां बनाने लगी,
और वीरान चौराहे—
खांसते रहे !
सड़कों के साए—
लम्बे होते रहे !
पर गलियां
मोक्ष का ताबीज बांटती रहीं
और अचानक ही
मैं अजन्मा जन्म हो गया !

अवचेतन के तोरणों पर
अलात की धूल चढ़ी मिठास को,
चेतन पलकों से बुहारती—
मेरी जिज्ञासा—
दम्भ के ऊंचे सिंहासनों पर
विनय-पुष्प-वृष्टि कर,
गौरवान्वित होती रही !
और विजय-मंत्र,

कव्वाली गाते-गाते
चारण बन गया है !

अपाहिज यम,
अकालमृत्यु की बाढ़ देखकर—
पगलाया सा—
विवश हंसता रहा···
हंसता रहा···!
क्योंकि
प्रकृति की करुणा
शराबी प्यालों में ढाली जाती रही है
और मुझमें
कबूतरी गुबार उफनता रहा !

शृंगारी मुखौटों में,
नैसर्गिक सुषमा की हंसी उड़ाती
वारांगनाएं,
कौतुक को वारुणी पिलाती हैं
और प्रत्येक चषक,
वारुणी वेग में,
चिरन्तर अस्तित्व को घोल—
ईर्ष्या की फैली पौध को
सिंचित कर गया !
और सारी दुनिया में
आसुरी रंगों की नागफनियां उग आई हैं ! !

आश्चर्य !
यहां पानी (परजन्य) भी मृत है
और बालू भी मृत !
अश्रम का दिखावा
और उसकी उदण्डता का हास,
ज्ञान की खेती को
श्री-हीन कर गया ! !

वेद मंत्रों से उत्पन्न अग्नि,
मृत्यु के उपरान्त,
दानवीय आग लगाती फिरती है
और तभी तो
ये फूली अधजली लाशें—
हर मंच पर—
नफरत की आग उगलती हैं !
और मैं—
भारहीन-पत्ता—
डाली से अलग
हवा में तैरता हूं ! !

मेरा यह पांचवां विश्व,
अपने पारदर्शी तक को
भारी कोषेय में आवृत कर
अपारदर्शी बन गया है !
और अब
एक हाथी
सात अंधों को मिल गया है !

किसी एक की दृष्टि
स्वीकार्य नहीं,
क्योंकि
वह सब की नहीं
और सब की दृष्टि
कभी भी एक की नहीं होती।
पर
कहना कितना आसान है—
'दिशाबोध सबका साथ होगा'
जबकि सात अंधे—
एक के लिए—
अलग-अलग बात करते हैं !
कितना विरोधाभास ! !

दिशा देने का विचार
एक ही मन में क्यों कौंधा ?
नहीं
सब बुद्धियों में
एक साथ क्यों नहीं कौंधा ?
पर सोचता हूं
तब इसका नाम क्या 'दुनिया' होता ?

अवचेतन की चेतन धारा में
व्यक्त अव्यक्त में ऐक्य है
क्योंकि वह
एक ही धुरी पर खिंची रेखा-बिन्दुओं से
जुड़ी रह कर
एक ही गति में रहती है।
किन्तु
प्रकटीकरण का सुख,
वर्तमान में नहीं,
भूत में निश्चित होता है
और वह
भविष्य-ढाल का सहारा ढूंढ़ती है !

यही कारण है
वे शब्द,
जिनको मैं बोलना नहीं चाहता,
बोलता हूं—
शायद बोलने को विवश हूं !
और मैं शरीर को
हमेशा ही
दूर तट पर छोड़ दिया करता हूं !!

समुद्र-मन्थन की क्रिया में,
अमृत और विष—
समधर्मा हैं।

विकार का चिरन्तन दुख सहने को
जितना श्रेष्ठ अमृत है
उतना ही श्रेष्ठ
मृत्यु का सत्य पाने को
विष !

तुमने पानी में रेखाएं खींच कर
मुझको विभाजित करने का प्रयत्न किया।
पर मैं
प्रतिक्षण जुड़ता रहा
अपने अनन्त से।
तुम्हारा और मेरा द्वन्द्व
अविच्छिन्न है
क्योंकि मैं
सतत् प्रवाह-जीवा हूं।

तुमने पतझड़ में
वसन्त ढूंढ़ने का प्रयत्न कब किया
कब माना तुमने
उसमें उसके अंकुर पहले से ही थे ?

तुमने धरती को
अपने हाथों से उजाड़ कर
अपना ही जीवन छीन लिया
और अब
जड़हीन वृक्ष रोप कर
वसन्त का भ्रम उपजाने में लीन !
पर न यह धरती तुम्हारी रही
और न यह वसन्त।

बीता विश्व
कुछ भिन्न नहीं—
उसने कुछ बोया, तुमने कुछ काटा

और देखते-देखते
एक और विश्व
तुम्हारे सामने खडा है—
हाथों में फरसा थामें !
और मैं प्रार्थना करता हूं !
'क्षमा कर'···'क्षमा कर' !

मूल्यों का मरुस्थल

नाद था।
नाद ने शब्द दिया
और वाणी ने
शब्दों का जाल बिछा दिया !

शब्दों ने
अवचेतन को प्रवाहित कर
चेतन को लोरियां दीं
और
आलोकित सत्यातीत सत्य को,
जो है···
नहीं है···
जलधारों-सा बरसा
इन लौकिक रेगिस्तानों में दफन कर दिया !

इन शब्दों के
छोटे बड़े अनेक विश्वों ने
जीवन-मस्तक को
किरीट-मिण्डत करने के लिए
जीवन का माथा ही उतार दिया
और हमने कहा
सभ्यता जवान हो गई !

मरती अनुभूतियों की
शीत चेतना का,

शरीर और आत्मा के विनिमय सम्बन्धों की
परछाईं बन जाती है।
अनुभूत शरीर
और
यथार्थ शरीर का द्वन्द्व
सनातन है।
पर हर मरती घड़ी को—
बिना समझे ही—
हंस-हंस दिया जाता है !
और मैं
अन्तर वेदनाओं के रूपों को
संजोने में व्यस्त रहता हूं !

कहते हैं
मृत्यु नटी है, है जीवन मंच पर—
बात पुरानी है—
फिर भी नित नई !
तभी तो
दूसरों को जलाने वाला,
अपने को अमर समझ,
वातानुकूलित शयन-कक्ष में,
सुरानुमत्त—
इन्द्र बनने के सपनों में खो
'दासियों' से
ठिठोली करता है !

तुमने
विचार और सिद्धान्त,
केवल भुलाने के लिए सिखाए हैं।
आज शरीर का वध नहीं होता
आत्म-हरण होता है !

व्यक्तिवादी विचार,
नारों या तलवारों के बल पर,

सार्वभौमिक विचार बनाए जाते हैं !
आदमी की बुद्धि पर डाका पड़ता है
और मन का हरण होता है !
और मैं
आंखों पर पट्टी चढ़ा—
बिना समझे—
मरने मारने के लिए
कटिबद्ध रहता हूं ! !

अब सभ्यता
पोस्टर बन गई है।
ज्ञान ठेके-सा नीलाम होता है !
और बांची जाने वाली पोथी—
एक ही बात दोहराती है :
दास बने रहो !

पीढ़ियों, शताब्दियों से
समझाया जाता रहा :
तुम दास नहीं विजित हो।
और विजित का धर्म
कहा गया होता है,
उसकी स्वानुभूति नही होती—
वह सिद्धान्त के आधीन होती है,
उसको समझने का अपराध
नहीं करना होगा ?
उसका दिन-रात
विजेता की दृष्टि के आधीन चलते हैं !
पीड़ाएं—
उसकी नियति
और शोषण—
उसका दैविक विधान है !
इसका विरोध करना—
अराष्ट्रीयता है !

विद्रोह है !
रौरव-नर्क खुलने का मार्ग···
और मैं—
पाषाण खण्ड-सा—
बेबस,
बस देखता रहता हूं !!

गुणात्मक प्रयत्नों के नाम पर,
स्वहित से उठ कर
क्या तुम कभी भी—
भूल से ही सही—
प्रेमेच्छा से आगे बढ़ सके ?
नीति-कौटिल्य बन सके ?
'वसुधैव कुटुम्बकम्' समझ सके ?

जीवन-मृत्यु का
सन्यास बोध पाने के लिए
क्या तुम स्वयम् से
अथवा अपने आसपास से
सहमत/असहमत का भेद
पा सकने में समर्थ हुए ?

निराश प्रभात में,
रात्रि की शान्ति ढूंढ़ने वाले
हमेशा भटकते रहे
और कोसते रहे
अंधकार की एकरूपता को !
गौरव-मृगतृष्णा—
तेज/अतिज के विश्लेषण में
डूबी रही ?
और एक छाया सिरहाने बैठ
मुस्करा-भर देती है !

तूफानों से
तूफान भागते रहे
और प्रातः बयार की आंखों का
मोतियाबिन्द और बड़ा होता गया !
अंधेरा—
उजाले को निगलने में है !
तभी तो मेरी आंखों की किरकिरी
अचानक द्विगुणित हो गई !

हर लगी
हर चौराहे पर—
किलोपैट्राएं प्रेम का व्यापार करती हैं !
और रोम की सामग्री—
चीनी बासनों को बेचती
फेरी लगाती फिरती है !

फ्रांस की कलादीर्घाओं में
हब्शियों के चित्र—
हंसते/रोते हैं !
क्योंकि दास प्रथा की समाप्ति पर,
लोग
उन्हें अपने रति-कक्ष में
शैय्या के नीचे लिटाते रहे
फिर भी उन्हें हब्शी कहते रहे हैं !!

इतिहास तो
केवल रोजनामचा है,
जो स्वर्णमण्डित आसनों के
चारों ओर फिरता रहा
और मानव-जंगल में
केवल 'भाट' उगाता रहा !
पर
बदलती आकांक्षाओं को

चीन्हने में असफल !

नीले कमलों के सरोवर
धीरे-धीरे लाल होते जा रहे हैं।
काई—
जल को पीती रही
और मुझे—
जीवन को अस्वीकारते हुए भी,
स्वीकारना पड़ता है !
इसीलिए
विश्व के परिवर्तित बिन्दु पर—
गदराए और लोथड़े गोश्त में
भेद नहीं रहा !

गति/अगति
कुछ भी नहीं है।
किन्तु
अविराम नृत्य चलता रहता है—
जो न तो भूत है
और न भविष्य,
न चलता है और न रुकता है
(न चलता है, न रुकना है)
न उत्कर्ष है और न अपकर्ष
—बस वर्तमान है !

क्या सम्पूर्ण विश्व
स्थिर हो गया ?
या मानव मस्तिष्क
विराट् की कल्पना करता-करता
स्वयम् बौना हो गया ?
क्या हम पहले जहां थे
अब वहां नहीं हैं ?
या जहां थे केवल वहीं हैं !

इस विश्व में
प्रत्येक दुराग्रह
आग्रह के रूप में पूजा जाता है।
लोग
हर उगते सूरज को
अर्घ्य चढ़ा
पानी का होम करते हैं,
पर डूबने वाला सूरज
उसकी नियति पर
लाल हंसी हंसता है
आंखें बन्द कर देता है!

'जीवो जीवस्य जीवनम्'
कल्याणमई दृष्टि से
कितना विनाशकारी है!
जीवन और मृत्यु
एक ही दृश्य में अवस्थित
केवल अपनी प्यास को पीते हैं!

सन्तोष का जीवन
असन्तोष के कोनों से बंधा है,
क्योंकि
सन्तोष कहीं विवशता,
कहीं नासमझी
और कहीं केवल दिखावा रह जाता है।
और हम
कभी बहकाने और कभी समझाने की—
अपने चारों ओर—
सन्तोष की पॉलिश लगाते रहते हैं।

जाने क्यों
पुरानी भूलों को दुहरा कर
इतिहास ने

जीवित हास की इति कर दी ?
किन्तु हम
भूल की चादर ताने,
भूत की भयानकताओं
और भविष्य की परिकल्पनाओं को
तर्क, उपदेश और आग्रहों के
सूत्रों में बुनकर,
देह को
उस जाल में जकड़
मृत्यु-मन को
अमृत्यु का बोध कराते रहते हैं !
यही मृत्यु-बोध,
विदेह बन कर,
सारी दुनिया को
कल्याणकारी कल्याण का
आसव पिला देता है !

आधुनिक सावित्री ने
यम से लोहा लेना छोड़
लाल परियों की नकल शुरू कर दी !
समय ने समय को
जीता या हारा,
पर इस भरी पूरी दुनिया में
मैं हारता रहा हूं !

सन्धि-रेखा पर
प्रकाश ने आकाश को जीत लिया,
मरकरी बत्तियों का अंधकार
गहन अंधकार का मखौल उड़ाता रहा
पर
मेरा शरीर
आकाश होते हुए भी
काल को नहीं पी सका ?

उसका अपना ही रावण
अपनी ही सीता हरण करता रहता है !

अखबारों में
कितनी ही सुख-प्रियाएं,
प्रीतम को विष पिला,
बाल नोचती हैं !
आज द्रौपदी को चीर—
हीरे-पन्ने जड़ी—
पांच सितारा होटल से
झुग्गियों तक में बिकाऊ है !
क्योंकि इस दुनिया में—
बे-रोक टोक—
उसकी तस्करी हो रही है !

कितना गतिमान है
मेरा यह स्थिर विश्व—
जिसमें
शब्द, ध्वनि संकेत और सब कुछ
गत्यात्मक है—
केवल गति की दुर्गति करने ?
अमापित कालाब्धि मापने !
या
इन हंसते फूलों का
सौन्दर्य-विश्लेषण करने !

पर
स्थिर वाद्यों की गतिमय लय को
शताब्दि की कोलाहल भरी चुप्पी
चुपचाप पीती रही
और
हर उगने वाला अंकुर
विकलांग हो भूलता रहा

झूलता रहा—
जीवित मृत्यु की गोद में !

अजन्म या मोक्ष की चाहना—
सत्ता नियंत्रण की बटिया सी—
शक्ति साधनों की
परिक्रमा कर,
महफिली आकर प्रत्यावर्तन में लगी रही !
और मेरी नियति
स्थिर बिन्दुओं का कम्पास बनकर
रह गई है !

कितना विचित्र है कि
कब्र और कॉफिनों में
मृत्यु जी उठती है
और अनेक रात्रि-द्वारों को बांध
वासना रहित आनन्द प्राप्त करती है !
पर
उस आनन्द का आनन्द
कौन बतलाएगा ?

कितना आश्चर्य है कि
काल,
किन्हीं चरणों पर नतमस्तक,
अक्षय, अनन्त उपहार दे
हाथ बांधे खड़ा रहे
और कहीं उफनती-सी बाढ़-सा
चींटियों के घर मिटा दे !
पर
मेरा यह सारा योग/वियोग
मात्र स्वप्नवत् लगता है !
क्योंकि
मौसम किसी की नहीं सुनती ।

और मैं
समीक्षाएं लिखता रहता हूं !!!

फिर भी
क्या कारण है कि
पहले कहे गए शब्दों की भाषा
पहली थी
और उन्हीं शब्दों की
आने वाली भाषा आगत ?
पर जन्म-मरण में
कोई परिवर्तन नहीं आया !
फिर भी क्या
अनन्त काल की गोदी का
शाश्वत शिशु
काल गति में कहीं विस्मृत हुआ ?
और
मेरा सारा परिश्रम
अपने में ही एक बड़ा प्रश्न-चिन्ह !

शब्द···शब्द···सन्दर्भ

मेरा यह विश्व,
बारूदी अट्टहास को
दर्शन की मखमली-गुदगुदी में छिपा,
शब्द के चौराहे पर
मूर्तियों-सा स्थापित कर देता है
और चारों ओर
शब्दों की तोपें दागी जाने लगती हैं !

हर आने वाला शब्द,
मूर्तियों को माथा झुका,
स्पुतनिक गति से ओझल हो जाता है !
फिर
शब्दों की नई भीड़,
अर्धनग्न अर्थों के आभूषण पहन
मूर्तियों के इर्दगिर्द खड़ी हो जाती है !
और मेरी संवेदना—
बेहोश—
अर्धरवासी पड़ी है
युगों-युगों से !

शब्द
अपनी गरिमा को नीलाम करने
अपने ही पक्ष-विपक्ष में
टूटने लगते हैं

नया जन्मलेवा शब्द,
उस मलबे में,
शब्दों को खोजता है
और अर्थहीन अर्थ को
बाजार में बेच देता है !
क्योंकि महत्त्व विज्ञापन का है
वस्तु का नहीं।

शब्दों के राम और रावण'
खो-खो का खेल खेलते हैं !
कुछ स्वार्थी शब्द
कंटीली झाड़ियां उगाकर भी
पुष्प-वाटिकाओं का नाम देते हैं
और दलालों के माध्यम से
अच्छा धन्धा कर लेते हैं !
और मैं
उद्यान की हत-आभा मात्र—
पड़ा रहता हूं एक कोने पर,
अनदेखा, अनचीन्हा !

शब्दों के लोहार,
उनको भट्टियों में गला-गला—
किसी के लालच भरे संकेत पर—
आग के गोले बना देते हैं
और शासन की तोपें
उनको दागती रहती हैं !
हमसे कहा गया वह 'कानून' है ?

गोलों का मेक
यों बेनामी होता है
पर
जैसे ही उस पर
किसी नेता का लेवल लगता है,
शब्द के चिथड़े उड़ जाते हैं !

शब्दों के शिल्पी
रामायण,
कुरान,
गुरुग्रन्थ
और बाइबिल के
मेहराब चुनते हैं,
किन्तु कुछ लोग
इन्हीं का नाम लेकर
नारों की तरह चिल्लाते हैं !
और कुछ
पत्थर की खामोशी सिरहाने रख
पत्थर बन जाते हैं—
केवल पत्थर !!

शब्दों की गुड़ियाएं
बैठक की
पारदर्शी अलमारियों में थिरकती,
अनकूती तरंगों को छाती से बांध,
कमरों के वातावरण को
तरंगित करती हैं !
सोफे पर पसरने वाला हर क्षण—
उसकी अनदेखी कर—
अपने में ही बेहोश रहता है !!

कितनी विचित्र है वह स्थिति,
जिसमें अर्थ बदल कर
हां का ना
और ना का हां
हो जाता है !
एक ही शब्द के अनेक अर्थ—
चेहरों, होंठों, आंखों और
रोम-रोम में समा जाते हैं !
फिर भी

शब्द अपने स्थान पर खड़ा
हंसता रहता है !

यह सारा विश्व
शब्दों के असंख्य रास्तों पर बढ़ा है।
उसने—
ध्वनियों को बदला
और अर्थों के परकोटे बनाकर
इतनी सीमा रेखाएं खींच दीं कि
एक दुनिया
अनेक दुनियाओं में
विभाजित हो गई !!

वह प्रथम 'वाद'
जो दिशाहीन दिशाओं में गूंजा,
अनन्त ऊर्जा की
अभौतिक मानवीय शान्ति का
प्राकट्य था
जो शब्दों से ऋचाएं बन,
मानव व्यवस्था को परिष्कृत करने—
अनन्त और अन्त के बीच
सार्थक सेतु बनाने का प्रयत्न करता रहा
और शायद
करता रहेगा ?

पर
यह प्रतीति
किन प्रतीकों में मुखरित होगी—
कब और कैसे ?
मेरे लाखों वर्षों का तप
बतलाने में असमर्थ !

क्योंकि
कुबेर से कृपण

कुछ सिक्कों ने
उसकी तिजोरियों में कैद कर दिया
और उन पर
रोबोटों की गारद बिठला दी !

आज प्रत्येक शब्द कैद है।
हां
कारागारों के लेबिल अलग-अलग हैं !
उन शब्दों को
तभी मुक्त किया जाता है
जब 'ब्रेन वाश' हो जाय
और वे चाबी वाले के अर्थ में
बोल सकें !

और मैं अब भी
आशा में हूं कि
शब्द अवश्य मुक्त होगा
और 'संभवामि युगे-युगे' वाला आएगा
पर, कौन और कब ?

हम क्यों नहीं जानते कि
कहीं न कहीं सब बौने हैं।
नेपोलियन भी बौना था
तो चंगेजखां भी कहीं बौना था
क्योंकि चमकता सूर्य
अन्त में
चिता का ही आश्रय लेता है
और हर प्रचण्डता का अन्त
दुखद ही होता है।
पर जानकर भी
हम जानना नहीं चाहते !

तभी तो हम
बासी सन्दर्भों पर बहस करते हैं
और इस गलतफहमी में हैं कि
'दुनिया का सबसे ऊंचा आदमी मैं हूं
बाकी सभी बौने हैं।'
क्योंकि हम सब
पहाड़ की छाया में चल कर
अपनी छाया नहीं देख पाते
या देखना नहीं चाहते ?

कभी तो आभास होता ही है कि
गुब्बारे से शब्द बिम्बों में
कहीं सुराख है !
शासन की छोटी-सी आलपिन
उसकी अर्थ-वायु
कभी भी निकाल सकती है
और शब्द मुर्दा हो जाता है।
तर्कों का गुब्बारा,
श्वास-नलियों का आक्सीजन समेट कर
अंधड़ में विलीन हो जाता है !
पर हम हमेशा
शब्द-ब्रह्म बनने का स्वप्न देखते हैं !

मेरे शिव बनने के क्रम में,
गली के मोड़ से
कुछ निंदियायें स्वर उभरे हैं !
कौतुक होता है,
पर साहस नहीं होता
स्वर को मूर्त शिव बनने का।
क्योंकि
उदास पाली समाप्ति के
संकेती सायरन
जोर से बजते हैं

और सभ्यता-सड़क पर,
व्यवस्था/अव्यवस्था के बूट
एक छोर से दूसरे छोर तक
शोर उभारते हैं !
और दादी मां की लोरी वाला स्वर
उन आवाजों में दब—
जाने कहां गुम हो जाता है ?

तुम कहते हो
सन्दर्भों पर बहस करो,
और उसी स्वर में कहते हो—
'सब बासी हैं !'
'अतीत के अजायबघर का संग्रह !'
क्या बिना आधार के
तुम नव-निर्माण में सफल हुए ?
मिल पाई है नयी दिशा ?

सन्दर्भों को ठेके पर देकर
तुमने नये मार्गों का उद्‌घाटन तो कर दिया
पर
क्यों नहीं देखते कि
मार्ग के उस पार और इस पार
उभर आए नुकीले पत्थरों पर
केवल भुलावे की मिट्टी डाल दी गई है
और अनुभूति की हल्की बौछार
उसको नंगा कर देगी !

बासी सन्दर्भों को
कितना ही कोसो,
युगों-युगों तक—
सृष्टि के जीवनपर्यन्त—
उसी रूप में बने रहेंगे
क्योंकि वे

दिशा-सूचक हैं,
आधार हैं
गत/आगत सत्य के।

पर मैंने देखा है
तुम सन्दर्भों की ओट में,
मेरी खिल्ली उड़ाते हो
पर स्वयम् अपने में भटक जाते हो।
क्योंकि आने-जाने वाले सन्दर्भ
किसी की पकड़ में नहीं।
और तुम कल्पना करते हो
कि उसकी ओट हो!

तुम नहीं जानते
कितना बड़ा झूठ है यह सच?
तुम सरिता के प्रवाह में
रेखाएं खींचते-खींचते
थक जाते हो
किन्तु क्या कभी
धारा को विभाजित कर पाए?

हम सब
अपने अन्त को
अनन्त से विलग करने में असमर्थ,
पर तुम
अपनी हार का दोषी
मुझको बनाते हो!
जबकि मैं जानता हूं
मैं ही अजन्मा जन्म हूं,
और मैं ही
चिर सनातन सन्दर्भ हूं।

तो आज,
जब मैं
आदि और अन्त के मध्य में खड़ा हूं,
देखता हूं
विगत काल वर्षों में,
शब्द और सन्दर्भो के प्रयोग सीखता—
हमेशा यही लगा कि
सीखना आरम्भ कर रहा हूं
और श्रम की हर इकाई का अर्थ
अन्त होता रहा है !

परिश्रम बहते स्वेद-कण,
आशा की नई किरणों में,
कुछ पाने को चमकते रहे
और फिर
विगत की धूल-कणों में
गुम होते रहे !!

प्रत्येक
सफलता और विफलता,
नवीन रूप-सज्जाओं में
मुखरित होती रही
और मैं
केवल शब्द-वाहक यंत्र !

क्या
यह शब्दों और सन्दर्भों की बाढ़,
ध्वनियों की भीड़
और अनुशासित अनुशासन का उद्वेग—
जो
आज तक ऊंचाइयों से गिरते रहे—
कहीं विजय के लिए सक्षम हैं ?
प्रत्येक उत्तर प्रश्न बन जाता है !

हर रोज
'वादों' के राजा बदलते रहते हैं
और नए-नए मेकअप में
आत्मसमर्पण के चेहरे
आते रहते हैं !
नई शक्ति आविष्कृत होती है
और यहां पर
एक सनातन युद्ध
चल रहा है···
चलता रहेगा—
हार को हार में बदलने के लिए !

एक मृगमारीचिका—
पाने खोने के बीच का भटकाव,
कर्म कुकर्म की निरन्तर व्याख्या
और लाभ-हानि की उहापोह—
हमको मशीन बना देती है !

सन्दर्भ
अर्थों में बदलते हैं—
'कर्म तेरा अधिकार है फल नहीं'
क्योंकि कर्म और फल के बीच
इतने अनदेखे भाग्य-तूफान हैं कि
जीने का सहारा
और दासता की धारा
इनके बीच होकर ही बहती है !
मैं तो केवल
भाव-विभावों का सतरंगी इन्द्रधनुष
बन कर रह जाता हूं !

पहला शब्द—
आं/मां
अनायास ही था,

किन्तु, जैसे ही मैं—
किसी मार्ग पर
जिसको मैंने संज्ञा दी 'जीवन' की—
बढ़ा या रुका हूं,
(नहीं जानता)
मुझको सारे सन्दर्भ और शब्द
अजनबी और अनबूझे लगते हैं!
सरल शब्दों का अर्थ
दुरुह और बेमानी बन जाता है !!

कह नहीं सकता कि
दुख/सुख/हर्ष/विषाद
कब जवान और कब बूढ़े हो जाते हैं ?
शब्दों और सन्दर्भों के
सागर में घिरे
जाने किस नियति का
शाप और वरदान
सहते रहते हैं ??

प्रकाश और वैभव का
उदात्त रूप,
अपनी ही गरिमा से मुक्ति पाने के लिए—
अपाहिज, बदहवास-सा
घिसटता रहता है/
बिलखता रहता है—
उस समय की खोज में,
जब उसकी बुनियादों का
शोषण मिट जाएगा,
वैभव निरापद होगा
और
प्रकाश के पीछे
अंधकार नहीं लगा रहेगा ?
और मैं

हर रोज
'वादों' के राजा बदलते रहते हैं
और नए-नए मेकअप में
आत्मसमर्पण के चेहरे
आते रहते हैं !
नई शक्ति आविष्कृत होती है
और यहां पर
एक सनातन युद्ध
चल रहा है…
चलता रहेगा—
हार को हार में बदलने के लिए !

एक मृगमारीचिका—
पाने खोने के बीच का भटकाव,
कर्म कुकर्म की निरन्तर व्याख्या
और लाभ-हानि की उहापोह—
हमको मशीन बना देती है !

सन्दर्भ
अर्थों में बदलते हैं—
'कर्म तेरा अधिकार है फल नहीं'
क्योंकि कर्म और फल के बीच
इतने अनदेखे भाग्य-तूफान हैं कि
जीने का सहारा
और दासता की धारा
इनके बीच होकर ही बहती है !
मैं तो केवल
भाव-विभावों का सतरंगी इन्द्रधनुष
बन कर रह जाता हूं !

पहला शब्द—
मां/मां
अनायास ही था,

ये सन्दर्भ खोजी आंखें
शहर की चौपाटियों पर लगे पोस्टर
जलाती फिरती हैं—
कहीं घूंसेबाज अली बन कर
तो कहीं फ्रेजीयर !
और मैं
मुंह बाए ताकता रहता हूं !

हमने सन्दर्भों की वाटिका नहीं
जंगल उगाए हैं
और जितने भी माली पैदा हुए
हम उनको
लैम्बॉर्ड स्ट्रीट के सट्टे की तरह
हर देश में बेचते रहे !
पर तब भी
और अब भी
कनफ्यूसियस और अरविन्द
गोदामों के एक कोने पर—
बिसराए से—
गहरी नींद सो रहे हैं !

मैंने आरामदेह नगर बसाने की
योजना बनाई
पर वहां
"मुण्डों" के जंगल उग आए
और उनमें हर उगने वाला मुण्ड,
अपने साथ
आकाश-बेल इसलिए लाया
कि अपने को
बूढ़े जर्जर मुण्डों (पेड़ों) से
सुरक्षित रख सके !

इस असम्भव को
सम्भव देखने को लालायित !

अंधकार—
चिरन्तन सत्य,
प्रकाश का जनक—
जिसमें द्वैत का बोध समाप्त हो जाता है !
भौतिक आंखें
उसमें कुछ देख नहीं सकतीं,
इतना तक कि
स्वयम् की भी
अनुभूति नहीं होती है,
ज्ञान नहीं !
शायद वह अनन्त
यही 'अज्ञेय' है !?

अज्ञय की चरम सीमा पर पहुंच,
हम/मैं/वह
सब विदेह हो जाते हैं
और पहुंच जाते हैं
उस बिन्दु पर
जहां
प्रकाश और अंधकार में
कुछ भी भेद नहीं होता।

पर मेरी इस दुनिया में
शब्दों के बनजारे
अपने अलग-अलग तम्बू तान,
नए सूरज उगाते हैं
और व्याख्याओं के जालों में
उलझी मानवता को
'प्रगति' का नाम देते हैं !

ये सन्दर्भ खोजी आंखें
शहर की चौपाटियों पर लगे पोस्टर
जलाती फिरती हैं—
कहीं घूंसेबाज अली बन कर
तो कहीं फ्रेजीयर !
और मैं
मुंह बाए ताकता रहता हूं !

हमने सन्दर्भों की वाटिका नहीं
जंगल उगाए हैं
और जितने भी माली पैदा हुए
हम उनको
लैम्बॉर्ड स्ट्रीट के सट्टे की तरह
हर देश में बेचते रहे !
पर तब भी
और अब भी
कनफ्यूसियस और अरविन्द
गोदामों के एक कोने पर—
बिसराए से—
गहरी नींद सो रहे हैं !

मैंने आरामदेह नगर बसाने की
योजना बनाई
पर वहां
'मुण्डों' के जंगल उग आए
और उनमें हर उगने वाला मुण्ड,
अपने साथ
आकाश-बेल इसलिए लाया
कि अपने को
बूढ़े जर्जर मुण्डों (पेड़ों) से
सुरक्षित रख सके !

पर उसी आकाश-वेल ने,
केवरे नृत्य करते करते,
सबको नंगा कर दिया
और आज
शब्दों की सभ्यता
चौराहों पर नंगी खड़ी है !

शब्दों के रिसाले—
सच को झूठ और
झूठ को सच बनाने में माहिर,
जनता के भुलक्कड़पन का
मजाक उड़ाते हैं
और
वही सर्वश्रेष्ठ कहलाता है
जो तथ्य/संदर्भ के नाम पर
खुल कर झूठ बोले !

जिसके पीछे फौज खड़ी है,
उसका हर झूठ—
सिद्धान्त बन
पीढ़ी का दिशा-निर्देश करता है !
वह डाका डालता है
और इतिहास में अमर वीर बन जाता है !
और मैं
तब भी चुप था और अब भी चुप हूं !!

जाने क्यों हम
सब को छापेखाने की
तसवीर देखना चाहते हैं ?
जूही और कैक्टस में साम्य खोजते हैं !
हरियाली में ज्वालामुखी बिठलाने का

प्रयत्न करते हैं ?
हर बुराई के समाचार बनते हैं,
पर बुद्ध और महावीर
रिसालों की सुर्खियां नहीं बनते ?
क्या श्रेष्ठ-गुणों का कभी
नैसर्गिक प्रस्फुरण होगा ?

आवाज का विश्व

चौराहे पर भीड़ है—
एक अनजान आवाज की मौत हो गई !
उसके गले पर
नेलपॉलिशी नाखूनों के निशान थे !
पोस्टमार्टम से पता चला
आवाज का दिल चोरी चला गया था
और उसकी जगह
रेडियोधर्मी सेल्स फिट हैं !

उस दिल में,
अनेक ईश्वरों के टुकड़ों के
कोलाज मिले
और जो चित्र उभरा
वह ईश्वर के स्थान पर
किसी नेता का था !

यह वही आवाज थी—
जिसने कभी वेदों को गाया
और कभी
पहाड़ों को पत्तों सा-उड़ाया था।
सागर-लहरें
उसके इंगित की चोरी थीं
और चारों ओर फैली हवाएं
हरकारे का काम करती थीं !

वह
लाखों की भीड़ के ऊपर
गूंजी थी संजीवनी-सी !
कितनी ही बार उसने,
पैगम्बर बन
संसार को नया जन्म दिया !
पर उसको कुछ तानाशाहों ने
नफरत की शराब पिला दी
और कहते हैं
तब से वह
गलने और जमने के बीच
बस ऐंठती रही !

यह शायद तब हुआ
जब आदिम-लिप्सा ने
धरती की सौंधी गंध पी ली थी,
या, जीवन का अविरल बहाव
चुक गया था
और वहां रह गई थी
केवल ऐंठन !
जीवन में उग आई थीं—
कटीली झाड़ियां,
जो न कभी खिलती हैं
और न और को खिलने देती हैं !

भीड़ में—
कुछ मरमराहट थी,
कुछ अस्फुट स्वर—
अनसमझी भाषा में
'वह टूटा राजा था
भव्य खण्डहर निवासी !'

उस खण्डहर के हर कंगूरे पर—

बिलखती आवाज
फांसी खा कर झूली थीं
और उसकी फर्श पर—
तुतलाती किलकारियां
सीमेन्ट की जगह बिछी थीं ! !

राजा के जबड़ों में
नंगी लाशें टंगी थीं !
और चारों ओर
काले-काले सागर थे—
जिनकी गहराइयों में
सिन्दूर भरे प्रथम स्नान के
केश डूबे थे !
पर उसकी आवाज की—
किसी ने भी
हत्या करने का साहस नहीं किया !
और मुझको आश्चर्य नहीं हुआ
जब
उसका विरोध करने वाली आवाज की
कुछ आवाजों ने हत्या कर दी !

वह विरोधी आवाज—
जिसमें बारूद था—
कहीं न कहीं पर
स्वयम् टूटी थी !
और इसीलिए वह
वैश्यालयों में बहती रही !
शराब-सी लड़खड़ाती,
हर मोड़ हर चौराहे पर
आबरू पर गोलियां दागती रही !
और मेरा सरगमी स्वर
आत्महत्या करने पर मजबूर ! !

उस टूटे राजा के
दिल की जगह आगवी सेल्स्
तथा मस्तिष्क की जगह
कम्प्यूटर फिट था,
इसलिए वह
रूप/कुरूप का भेद
नहीं कर सका
और शराब तथा गुलाबजल में
उसको समानता दिखाई दी !!

उसने
आदि-अनादि का सेतु
अपने ही हाथ से तोड़ा
और रोम के लम्बे मार्गों पर,
दासों को सलीबों से लटका,
हंसता रहा !
सुकरातों को विष पिला
और लाखों प्रोटेस्टेन्टस को
अग्नि में होम कर—
धर्म के नाम पर—
भाई से भाई को कटवाता रहा !
पर
इसके दानवी अट्टहास में भी,
किसी कोने से,
मीरा के स्वर गूंजते रहे !

वह आवाज—
जो देवारायन के लिए थी,
वह दियाना ढंग से चिल्लाती रही !
तभी तो
आदमी ने
इन्सानों और जानवरों में

कितना विचित्र है कि
उनकी आवाजों में आश्चर्यजनक साम्य था !!
और मेरी आवाज
उन गोलियों से विंधती रहीं !

मैंने देखा है
मेरी स्वप्निल आशा का ताज—
टुकड़े-टुकड़े हो—
चारों ओर बिखर कर
कंकड़,पत्थरों में विलीन हो गया !

यह आश्चर्य
आज
इतना सरल लगने लगा है कि
यह सरलता ही
मेरे आश्चर्य का कारण बन गई !
और मैं जानते हुए भी
अनजान बना हूं—
न समझता हूं
और न याद रख सकता हूं।
तभी तो
मेरी विवशता
केवल झपकियां ही ले पाती है !

कुछ नई आवाजें हंस रही,थीं
कि पहले की आवाज—
बूढ़ी होकर
अपना अस्तित्व खो बैठी है !
उसको अंधेरे तालाबों में
गुम हो जाना चाहिए।
पर जाने कैसे
वह हिमालय पर चढ़ गई
और उसका स्वरूप

आज भी ज्यों का त्यों है !
वह बूढ़ी आवाज कह रही है—
समझो,
तुम इतनी बात भी नहीं जानते कि
अन्त प्रारंम्भ का नाम है
और मुझसे ही
तुम्हारा जन्म सम्भव हुआ।

जीवन के लौकिक क्रम में
तुम भले ही न समझो,
किन्तु अलौकिक क्रम की
सनातन चक्राकार धारा में
प्रारम्भ और अन्त का भेद नहीं।
भस्मासुर बन कर
स्वयम् को मत जलाओ !

आज भी
हजारों वर्ष पुरानी आवाज
अपरिवर्तित ध्वनि-विज्ञान को,
भिन्न-भिन्न कटोरियों में भर
अलग-अलग नामों से सील करती रही।
और एक ही आवाज
अपने में ही अजनबी हो गई—
कहीं मौसम की आवाज,
कहीं समय की
तो कहीं शाह की !
कहीं बागी की आवाज
तो कहीं शोषित की !
और उसी आवाज ने
कहीं थिरकते घुंघरू और थापों की लय में,
मदरित कामना की,
तो कहीं

आणविक विस्फोटों में उभरी
पिशाची हंसी !

कुछ आवाजों को हमने
समाचार पत्रों, आकाशवाणी, दूरदर्शन
और लाउडस्पीकरों द्वारा
इतना तेज कर दिया है कि
एकाकी कड़कती बिजलियां
और गरजते बादल,
उस आवाज में गुम हो जाते हैं !
तभी तो मेरी आवाज
नक्कार खाने में—
बस तूती रह गई है !!

वह आवाज 'दर्शनीय' है—
विश्व-द्रष्टा, सर्व-व्यापी।
और कहा जाता है कि
उसको ईश्वरीय मानो।
नहीं तो मक्खी की तरह
कभी भी फेंक दिए जाओगे !
वह आवाज झूठ लगे तो
अपने को दोषी मानो
और हमेशा
आंख, कान, होंठ बन्द रखा करो !

वह आवाज
असंख्य जन-जन की आवाज से
भारी लगती है।
पर लिपिस्टिकी होंठ जानते हैं कि
वह बौनी है ! दीन है ! याचक है !
फिर भी देखो तो
मेरी आवाज को सब ओर से काट रही है !

स्निग्ध, मरमरी ध्वनियों के
दृश्य-अदृश्य जाल
और उसके पीछे
मदमाती फुलवारियों का आमंत्रण,
हिटलरी ध्वनियों को जकड़ने में
यम-पाश से भी अधिक कठोर है !
फिर भी
हम ही तो उसका आह्वान करते हैं !
क्योंकि मुक्ति भी वही
और भक्ति भी वही है !
और मैं
श्रोता मात्र हूं बेवसी का !

स्मृति…इतिहास… झरोखे…

भुलाने योग्य क्षण
कभी भुलाया नहीं जाता।
बदनाम गलियां इसलिए बदनाम हैं कि
हम सब
उनको भूलने का नाटक करते हैं
और भूल का प्रायश्चित
भूल से ही करते हैं !

कोलाहल का सन्नाटा—
धीरे-धीरे,
श्रवण-नलियों में जम जाता है
और कान के पास होने वाला शोर भी
सुनाई नहीं देता !
और भले ही वह आयु-क्षयी हो
लोगों में
अकुलाहट पैदा नहीं करता।

यहां नित्य हत्याएं होती हैं
क्योंकि मनुष्य से बड़ा पैसा है, !
जिसके पीछे हजारों स्कैंडिल
रोज सुर्खियों में आते हैं
और हर आदमी में कम्पन्न छोड़ जाते हैं
फिर भी वह रोज भूल जाता है

और अब
शायद यह उसकी आदत हो गई है !

आदमी—
सरेआम आदमी को खाता है।
और बेबस का गरम गोश्त
वासनाओं की भट्टियों में जलता है !
तभी तो
सभ्यता और संस्कृति के माथे पर
कैन्सर उभर आया है !!

आज प्रकृति की गोद सूनी है
और हिमालय का सौन्दर्य—
परदे पर हिलता है !
गंगा की अविरल ध्वनि
टेपरिकार्डों में बन्द है !
और मैंने कहा
मैं प्रकृति-जयी बन गया हूं !

कितना बड़ा छलावा है कि
छल सत्य लगने लगे
और हम तालियां पीटते रहें ?

परदे का हीरो—
एक ही छलांग में,
हिमालय की ऊंचाइयों को लांघ जाय !
रॉकी की मीन-मेखला
हाथों से फिसलती रहे
और अमेरिका की स्वातंत्र्य मूर्ति
क्लबों में बॉल-डान्स करती फिरे !

देखता हूं
एक को ही देखने वाले चुप हैं।
और यही चुप मुखरित होता है

शताब्दियों के फैले चित्रपट पर—
जिसको हमने संहिता का नाम दे
अमर बनाने का यत्न किया !
हल धरती को चीर कर
कितनी ही रेखाएं उभारता है,
पर उसके ही गंध-जीवन-तत्व से—
धरती में विलीन होकर भी—
हम फिर जी उठते हैं
क्योंकि
जीवन ।
हमेशा जीवित है ।
मैंने देखा है
मैं ही धरती की संस्कृति हूं।

विजेता कहता है
'मैं विजयी हुआ !'
और वहीं से
उसकी हार प्रारम्भ हो जाती है।
तभी तो स्वर्ग में
अभिमन्यु अर्जुन को नहीं पहिचानता
और तभी गीता की रचना भी सार्थक हुई !
और मैं सोच रहा हूं—
हम सोचते क्यों हैं ?

इतिहास की स्मृति
कितनी बड़ी विस्मृति है
कि हम उसको दोहराते रहते हैं !

इतिहास—
चाहे वीरता का रहा हो,
चाहे स्वतंत्रता का,
उसके सारे चिन्ह
भूत की अतल गहराइयों में विस्मृत हैं !

हमने हमेशा वर्तमान को
उसके बराबर खड़ा किया है,
पर समान होते हुए भी—
वह असमान ही रहता है
और सब जानते हैं कि—
और आगे भी रहेगा।

प्रेम और घृणा—
एक ही नाम है।
पर इन पर ही
महाकाव्यों की विपरीत रचना हुई है!
कहते हैं
जीवन—
दो सीमाओं के बीच का नाम है
और कुछ कहते हैं—
यही जीवन है!

जीवन और मृत्यु—
प्रत्यावर्ती हैं/समान धर्मा हैं।
उसमें लगाव/अलगाव
केवल भुलावा है—मायावी है!
तभी तो
मैं इतिहास बन गया हूं!

हम
भू-गत अवशेषों की खुदाई कर
उन चेहरों और नगरों की पहिचान करते हैं
जो अतीत के धुंधलके में खो गए!
मैंने देखा है—
हम उसमें
अपनी समानता ढूंढते फिरते हैं
और सारा गौरव ओढ़ लेना चाहते हैं!

पर नाम 'खोज' का होता है,
चौंकाने वाले समाचार का होता है,
और हजारों-हजारों वर्षों का दर्द—
अचानक उभर आता है!
लोग कहते हैं—
हम जीर्णोद्धार कर रहे हैं!

वह कह रहा था—
'भूलना अच्छा है'
क्योंकि मौसम—
क्षण-क्षण में बदलता है
और हम नई चादर ओढ़ लेते हैं,
जिसको हमने नाम दिया—
विकास!

समय का दूरगामी अन्त होता है!
न जाने रोज
कितनी आवाजें मरती हैं—
दूर और निकट,
किन्तु सर्वथा अनचाही!
फिर भी सब अपने में ही मूल्यवान है!
तब उनकी याद कर घाटे का सौदा क्यों करें?

हम टूटे तारों पर
स्वर नहीं साधते।
इल्तुतमस की चादर रोज नहीं ओढ़ सकते
और न हम विभाजित कर सकते उनको—
जो उनके पक्ष विपक्ष में हैं!
फिर हम स्मृतियों के झरोखे—
बनाएं ही क्यों!
मृत्यु प्रतीकों को
पान का बीड़ा क्यों भेंट करें?
पर मैं तो

प्यार के प्रतीकों को छाती से चिपका,
अशोक की छाया में खड़ा हूं !

दोपहर की भट्टी
यादों की हरियाली को
झुलसा देती है
और कभी कोई आंसू की बदली,
झुलसते मन को,
गीला कर जाती है !
और मेरा मन,
शताब्दियों से—
कभी शोले उगलता है
तो कभी सावन बन रहा !!

संसार में
अमरत्व और विष की खोज करने वाले
नहीं जानते कि
वे खोजी हैं ?
यह खोज तब तक की ही है
जब तक हम न जानने योग्य को—
जानने के लिए व्याकुल हैं
और जिस दिन जान जाएंगे
उस दिन
मृत्यु मर जाएगी !

इस व्यापक विश्व में
एक ऐसा अवचेतन चेतन है,
जो कालातीत काल से व्याप्त है !
पर हम बुद्धि की पतंगें उड़ा कर
जानने न जानने की पेंच लड़ाते हैं
और एक के कट जाने पर
हर्षित होते रहते हैं !
पर मैं तो,

हमेशा ही अपने को
भूल सागर में सुरक्षित बनाए हूं !

मैं जानता हूं
मौसम मेरे हाथ में नहीं।
कुएं की मुंडेर-सा मेरा मन
केवल ताकता रहता है बदलाव को।
फिर भी मैं
उसको अपनी कृति का अंग मानता हूं—
वसन्त और पतझड़ लाने में !
कैसा खेल है यह ?

जीवन अनन्त है…
पर
जीवन क्षणभंगुर है !
और हर क्षण वह
दांव पर लगा रहता है !
शायद इसीलिए वह
कभी भोगी, कभी जोगी बन कर भी
बिखर कर विलीन हो जाता है !
फिर भी,
काल पथ पर—
जीवन सनातन है।

अन्त के परिवेश में
इन बिन्दु-जीवों को विभिन्न करें
तो ज्ञान और आस्था का विराट
अनावरण उसमें सिमिट जाता है
और जीवन—
आकाश की परिधि को लांघ,
स्वयम् अनन्त बन जाता है !

मैं चारों ओर

सल्में सितारों से जड़े 'वाद'
चमकते रहते हैं।'
क्षण उनको भले ही जानता हो
पर समय उन पर
धूल की चादर डाल देता है
और कुछ अच्छे और बुरे नाम देकर
चुप हो जाता है !
और मैं
केवल समय की माला जपता हूं—

समय जानता है कि
पूर्ण की परिकल्पना का महत्व
अपूर्ण को ईंटों से चुना जाता है
और वे—
धूल-कणों सी,
उस समꣳ तक चिपकी रहती है
जब तक उनको झटक नहीं दिया जाता !
और मेरे फेनिल-सागर की उबासियां
तट को ही बहा ले जाती हैं !

कितना सनातन है यह क्रम।
पर हम महल के कंगूरों पर
पूर्णता की मशालों को जलाने में
सारा जीवन लगा देते हैं !
और जरा-सी कम्पन से ही
वह,
क्षण में भुताही महल बन कर रह जाता है !

फिर भी एक विडम्बना प्रयत्न
चलता रहता है
और मनुष्य—
अपनी अपरिमित वासनाओं से घिरा,
महल के चारों ओर—

हमेशा ही अपने को
भूल सागर में सुरक्षित बनाए हूं !

मैं जानता हूं
मौसम मेरे हाथ में नहीं ।
कुए की मुंडर-सा मेरा मन
केवल ताकता रहता है बदलाव को।
फिर भी मैं
उसको अपनी कृति का अंग मानता हूं—
बसन्त और पतझड़ लाने में !
कैसा खेल है यह ?

जीवन अनन्त है···
पर
जीवन क्षणभंगुर है !
और हर क्षण वह
दांव पर लगा रहता है !
शायद इसीलिए वह
कभी भोगी, कभी जोगी बन कर भी
बिखर कर विलीन हो जाता है !
फिर भी,
काल पथ पर—
जीवन सनातन है।

अन्त के परिवेश में
इस बिन्दु-जीवों को चित्रित करूं
तो ज्ञान और आस्था का विराट
अनायास उसमें सिमिट जाता है
और जीवन—
आकाश की परिधि को लांघ,
स्वयम् अनन्त बन जाता है !

मेरे चारों ओर

सल्में सितारों से जड़े 'वाद'
चमकते रहते हैं।'
क्षण उनको भले ही जानता हो
पर समय उन पर
धूल की चादर डाल देता है
और कुछ अच्छे और बुरे नाम देकर
चुप हो जाता है !
और मैं
केवल समय की माला जपता हूं—

समय जानता है कि
पूर्ण की परिकल्पना का महत्व
अपूर्ण की इंटों से चुना जाता है
और वे—
धूल-कणों सी,
उस समय तक चिपकी रहती है
जब तक उनको झटक नहीं दिया जाता !
और मेरे फेनिल-सागर की उबासियां
तट को ही बहा ले जाती हैं !

कितना सनातन है यह क्रम।
पर हम महल के कंगूरों पर
पूर्णता की मशालों को जलाने में
सारा जीवन लगा देते हैं !
और जरा-सी कम्पन से ही
वह,
क्षण में भुताही महल बन कर रह जाता है !

फिर भी एक विडम्बना प्रयत्न
चलता रहता है
और मनुष्य—
अपनी अपरिमित वासनाओं से घिरा,
महल के चारों ओर—

सूर्यकमलों और चन्द्रकमलों के सरोवर
बनाने का यत्न करता रहता है !

जीवन की दुग्ध-गंगा में,
विलीन होते बिम्बों के स्थान पर,
नवीन बिम्ब उभर आते हैं
और लगता है कि,
हम पूर्ण हो गए—
पर सब मृत्यु-क्षयी !

सच मानो
जीवन—
अपूरित जीवन का ही नाम है,
जो इतिहास के झरोखे से—
अनेक सन्दर्भ-चित्रों में—
बदलता रहता है !
और मैं
पूर्ण की परिकल्पना मात्र बन जाता हूं—
बस !

कितनी अबोध ध्वनियां,
कितने चेहरे,
जो अनजाने होते हुए भी
चिर पहिचाने लगते हैं,
सबको—
किसी-न-किसी चौराहे पर मिलते हैं !
और हम अपने को—
दृश्यानुभूति, सन्दर्भानुभूति और कालानुभूति में

हर चौराहा—
समुद्र-तट है,
जिस पर लहरों की भीड़ तो होती है
पर, हर क्षण नई लहर होती है

और हम केवल भीड़ की
जानकारी ही रख पाते हैं !
कितना अनोखा असत्य है
जो सत्य लगने लगता है !

जी चाहता है—
सरोवर की मीठी शान्ति,
झरनों और पक्षियों की मनहर कूक में
हम मिल जाते
और जीवन एक-रस हो जाता।
किन्तु
कुछ संकेत
किसी को दिशा-बोध कराते हैं
और किसी को पथ-भटका देते हैं !
और मेरे मन की भावनाएं
शूली चढ़ जाती हैं !

पर
ये स्वर और ये ही चेहरे,
ये ही चौराहों की ध्वनियां—
किसी को मसीहा बना देती हैं
और किसी को—
शैतान की फितरत !
और मेरा अस्तित्व
जाने कहां भटकता रहता है ?

मेरी देहली पर आई—
मुस्कान किरणें
जाने कब छोटी हो जाएं ?
और इस तथाकथित भवन की छाया
उस सीमा तक बढ़ जाए कि
समूचे ही भवन को निगलने
और रह जाय केवल नीरव !

किन्तु तुम प्रतीक्षा नहीं कर सकते
और इसीलिए
मुस्कानों को चुराने की साजिश करते हो !!

पर तुम्हें कहां पता रहता है कि
मुस्कानों को,
तुम तक आते-आते,
निशा बीच में ही,
अपनी गोद में छिपा—
स्वप्निज लोरियां दे सुला देगी
और आसपास के सारे लोग,
पश्चाताप की बेड़ियां पहिन
नाचने का अभिनय करते रहेंगे !
तब शायद मैं—
गहरी नींद में शिव बना रहूंगा !!

कितने चश्मों से
देखते हैं हम जीवन को—
किसी को हरियाली
लाल दीखती है,
किसी को पीली
तो किसी को काली !
और वंशानुगत पले भ्रम—
अजन्मे जन्म को
लोहे के जूते पहना देते है !
और वह बेचारा
जीवन से पूर्व ही बौना हो,
विस्मृत हो जाता है !

हम चन्द्रमा और मंगल पर
जीवन ढूंढ़ते हैं !
किन्तु
अपने चारों ओर बिखरे जीवन को

भूलते ही नहीं
ठुकरा कर रास्ते से दूर फेंक देते हैं !
विज्ञान की छाती पर
एक तगमा और चिपक जाता है !
पर यहां पड़ी,
मेरी भावनाएं—
सिसकती/रोती रहती हैं ।!

कब तक तुम
इन बिके हुए मोहरों से—
सार्वजनिक जीवन की परिधियों में—
बंधते रहोगे
और ताजपोशी करते रहोगे
उस विचार की—
जो तुम्हारी छाया में पत्थर बन गया !
मुझको पता नहीं,
शायद वह
प्रलय-क्षण ही अपना स्थान छोड़ेगा ?

देखते नहीं
पाषाणों ने कितने ही—
परोक्ष-अपरोक्ष
रोडेशियाओं का निर्माण किया,
जिनमें जीवन पुष्प,
खिलते ही मुरझा जाते हैं !
हीरोशिमा की सांसें आज भी उखड़ी हैं !
फिर भी
उसमें से रास्ता निकाल कर—
नवजीवन की कोंपलें फूट रही हैं ! !

देखते हो
तुम्हारे फेंके हुए स्वार्थी पाषाणों को,
करुण-लताएं आवद्ध कर

नव-उद्यानों का निर्माण कर रही हैं !
पर तुम्हारा—
चंगेजी-दम्भ,
अभी भी
उस सत्य को नहीं स्वीकरता !
पर मैं
आज भी आशावान हूं।

मौसम की हर गंध, सुगंध को
थैलियों में बन्द नहीं किया जा सकता।
तुम कब तक
वीणा के स्वर को—
नारों की चिल्लाहट
और तोपों की गर्जना में छिपाते रहोगे ?
कब तक
कुण्ठा-पाषाण को गले में लटका कर
कलाकार की छवि संजोए रहोगे ?
और कहो—
जीवन की स्निग्ध पहिचान को
तुम्हारी अहंकारी उपेक्षा
कब तक झुठलाती रहेगी ?

तुमने इतिहास को,
केवल पाठ्यक्रम बनाया
नहीं तो उसके निष्कर्षों
यों ही नजरअंदाज कर सकते थे ?

जीवन के इस अनन्त प्रवाह को बहने दो।
यह अपने तटों का निर्माण—
स्वयम् करेगा।
सावन की बाढ़ें—
भले ही भयभीत करती हों
किन्तु, वही तो लाती हैं
हमारे लिए हरियाली सरगम !

आदिम प्रकृति
जीवन को लोरियां देती है !
बालियों की खिलखिलाहट को—
बचपन-सी हवा—
अभी भी,
कानों में भर जाती है
और सवेरे सी
मनुहार भरे—
शहदी उलहाने देकर चली जाती है !
पर तुम—
दीवारें चुनते हो !
तभी तो कमल पंखुड़ियां तक
मेरी आंखों को टीस देती हैं !

सुन्दर चेहरों पर
कितने नागफनियों के जंगल फैले हैं ?
और उनमें—
सुनहरे और नीलामी रंगों के अजगर,
कुण्डलियों में बैठे—
शापायित ! !

तुम अपने घर को संवारने में
आने वाले अंधड़ को भूल जाते हो !
पर नहीं जानते कि
अभी-अभी किया हुआ 'मेकअप'
इस अंधड़ में
रेगिस्तान बन जाएगा !

आज का अभिशाप,
कल को अपाहिज कर
तुम्हारे चन्द्रमुखों पर
'क्रेटरों' को बो देगा
और फिर,

अतीत में छिपा
कोई आगत शोध कहेगा—
'तुम जीवन-रहित हो'
और मैं
कब तक ऑक्सीजन ढोता रहूंगा ?

इतिहास के
दिन बहुत छोटे
और रातें लम्बी होती हैं !
और ये अनहाई रातें—
पिशाची अट्टहास करती हैं ! !

तुमको वह मोती चाहिए
जो सागर की अनन्त गहराइयों में
गुम हो गया है।
पर तुमको भान तक नहीं होता कि
मेरी अश्रु-बूंदें ही—
सीपियों में क़ैद,
मोती बन गई हैं !
लोग जाने क्यों
उस मोती को ही ढूढेंगे
जो अपना पानी खो चुका है !

जानते हो
द्रौपदी का कमल,
जिसके लिए भीम—
दुरुह-शैलों की खोह में गया—
उपलब्धि नहीं
मोह-भंग था—
जो कुरुक्षेत्र में मिला !
और तुम आज भी
नागफनी-फूलों से अठखेलियां करते हो !

बेनक़ाब जीवन—
भूत पर गोलियां न दाग।
देख ले भविष्य के पास उद्जन बम है !
भूत की हत्या नहीं होगी
वर्तमान की धज्जियां उड़ जाएंगी !

प्रकृति का वसन्त
जीवन का चरम है।
और पतझड़—
अनास्थाओं की थकान !
पर मैं
अनन्त सागर की गहराई स्मृति हूं
जो भी चुकती नहीं।

यह भी सच है कि,
हमारी स्मृति में—
हम ही होते हैं।
तभी तो हर रोज कुआं खोद कर
उसको पाटते रहते हैं !

बचपन में सिखाया था—
झरोखे में बैठकर वह
सबकी चाकरी देखता है
और मौसमों द्वारा
इतिहास को लिख कर भेजता रहता है,
पर, हमारी भाषा और है
और उसकी और !
तभी तो
हमारी हर जीत, हार में बदलती रहती है ??
मैं सोचता हूं—
मेरी गरुड़-दृष्टि हो जाती !

यह हमारा विश्व—

बारूदी हवस में—
अपनी हत्या के लिए स्वयम् करिबद्ध,
बारूद के ढेरों पर
महल बना रहा है !
और कम्प्यूटरी आवेश में
अणुधर्मी चिनगारियां उड़ा रहा है !
कहो
अब क्या होगा भावी इतिहास ?

कितनी पागल है यह दुनिया कि
आज पागलपन—
मुंह छिपाए फिरता है !
विशिष्ट ज्ञान का अज्ञान—
अपने चारों ओर मरु-सागर फैला,
जीवन-हरियाली को
पीता जा रहा है
और मैं—
खेजड़ी बना गुमसुम !
फिर भी मैं,
उस दिन की प्रतीक्षा में हूं
जब सावित्री
अपने सत्यवान को
फिर छुड़ा लाएगी
और मेरा यह विश्व
जीने योग्य हो जाएगा !
पर
यह अनन्त क्रम
क्या मेरी चाहना पर टिका है ?
शायद !

□□